न्याय दर्शन : एक परिचय

डॉ. रत्नाकर बाजीराव म्हस्के
सहायक प्राध्यापक
श्रीमती सुशिलादेवी साळुंखे कॉलेज ऑफ एज्युकेशन, उस्मानाबाद
मोबाईल – ९८८१८२२४५३

प्रास्ताविक

न्याय दर्शन के मुख्य प्रवर्तक महर्षि गौतमजी हैं । इनका पूरा नाम मेधा तिथि गौतम हैं। महर्षि गौतम को अक्षपाद के नाम से भी जाना जाता हैं। जिस कारण न्याय दर्शन को अक्षपाद दर्शन भी कहा गया हैं। न्याय दर्शन को तर्कशास्त्र, प्रमाणशास्त्र एवं वाद विद्या के रूप में जाना गया हैं।

न्याय दर्शन के सम्पूर्ण साहित्य को दो भागों मे विभाजित किया जाता हैं। एक को प्राचीन न्याय तथा दुसरे को नव्य न्याय की संज्ञा दी गई हैं। प्राचीन न्याय का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ न्याय सूत्र हैं, जो महर्षि गौतमजी रचित हैं। प्राचीन न्याय के अन्य प्रमुख ग्रंथ हैं, वात्स्यायन का न्याय भाष्य, उद्योतकर का न्याय वार्तिक, वाचस्पति मिश्र की न्याय –वार्तिक –तात्पर्य –टीका, उदयनाचार्य की तात्पर्य –परिशुद्धि एवं न्याय –कुसुमांजलि, जयन्त कीन्यामंजरी तथा भासर्वज्ञ का न्याय सार। इस प्राचीन ग्रन्थ में पांच अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय के दो खण्ड हैं। न्याय सूत्र में मुख्य रुप से सोलह पदार्थों का विवेचन हुआ है।

न्याय दर्शन स्वरुप

न्यायदर्शन को मुख्यत: चार भागों में विभक्त किंया जात सकता हैं –

१. सामान्य ज्ञान की समस्या हो हल करना।
२. जगत् की पहेली को सुलझना।
३. जीवात्मा तथा मुक्ती।
४. परमात्मा और उसका ज्ञान ।

न्याय दर्शन में प्रमाण प्रमेय आदि तत्त्वों का विवेचन एवं ज्ञान नि:श्रेयस प्राप्ति के निमित्त किया जाता हैं। यहां इस सन्दर्भ में तर्क एवं प्रमाण समस्याओं का समाधान विस्तारपूर्वक किंया हैं। इन समस्याओं का अध्यायन मोक्ष प्राप्ति के लिए ही होता हैं। इसी क्रम में न्याय दर्शन सोलह पदार्थों को स्वीकार करता हैं, वे इस प्रकार हैं।

१. प्रमाण

जिस साधन द्वारा प्रमाता का प्रमेय से सम्बन्ध होता हैं उसे ही प्रमाण कहते है। ज्ञान के साधन के प्रमाण कहते हैं। न्याय के चार प्रमाणों हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द को स्वीकार करता हैं।

२. प्रमेय

जिस विषय को जाना जाता हैं उसे ही प्रमेय कहते हैं। जिस वस्तु का यथार्थ रुप में ज्ञान हो सके, वही प्रमेय कहलाता हैं। प्रमेय में आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुध्दि, मन ,प्रवृत्ति,दोष, प्रेत्यभाव, फल, दु:ख एवं अपवर्ग। ये सभी प्रमेय मोक्ष प्राप्ति के लिए अनिवार्य है।

३. संशय

कसी एक ही वस्तु के सम्बन्ध में जब परस्पर विरोधी अनेक विकल्प उपस्थित होते हैं तथा उस

वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान नही हो पाता हैं तो अस स्थिति को संशय कहते हैं। यह मन की अनिश्चित अवस्था हैं।

४. प्रयोजन

जिससे कार्य में प्रव्रत्ति होती हैं, वही प्रयोजन हैं। इच्छापूर्वक सम्पादित कार्य का कुछ –न– कुछ प्रयोजन अवश्य रहता हैं। किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए कार्य करना ही प्रयोजन हैं।

५. दृष्टांत

जिसे देखने से किसी बात का निश्चय हो जाए उसे दृष्टांत कहते हैं। वाद–विवाद में अपनी बात या अपने पक्ष को प्रमाणित करने के लिए इसकी सहायता ली जाती हैं।

६. सिद्धांत

जिसके माध्यम से किसी विवाद का अन्त होकर विषय की सिद्धि होती है, उसे ही सिद्धांत कहते हैं। प्रमाण के आधार पर जब कोई विषय अन्तिम रुप से स्थापित हो जाता है तो वही सिद्धांत कहलाता हैं।

७. अवयव

अनुमान के वाक्यों को ही अवयव कहते हैं न्याय दर्शन में अनुमान के पांच अवयवों को स्वीकार किंया गया है। जो वाक्य अनुमान का अंग नही होता है उसे अवयव नही कहते हैं।

८. तर्क

तर्क एक प्रकार की काल्पनिक युक्ति को कहते हैं जिसके आधार पर विपक्षी के कथन को दोषपूर्ण प्रमाणित किया जाता हैं। तर्क के आधार पर किसी सिद्धांत का प्रबल समर्थन प्राप्त होता है।

९. निर्णय

किसी विषय के बारे में उत्पन्न संशय को दूर हो जाने पर निष्कर्ष एवं निश्चय पर पहुंचा जाता है उसे ही निर्णय कहते है। संशय के समय दो विरोधी विकल्प मौजूद रहते हैं। किंसी निर्णायक अवयाव के द्वारा जब संशय का निराकरण हो जाता है तो यही स्थिति निर्णय की स्थिति हैं। निर्णय पर पहुंचने के लिए पक्ष एवं विपक्ष की सभी युक्तियों पर विचार करना अनिवार्य होता है।

१०. वाद

उस विस्तृत विचार को वाद कहते हैं तिसमें सर्वप्रमाणों एवं तर्क की सहायता से तथा पंचावयव के द्वारा विपक्ष का खण्डन करके उपने पक्ष का समर्थन किंया जाता हैं। यहां पर अन्तिम निर्णय किसी सर्वमान्य स्वीकृत सिद्वांत कं विरुद्ध नहीं होता है। वाद के द्वारा वादी एवं प्रतिपादी दोनों ही अपने –अपने मतों की पुष्टि करते है तथा उसे प्रामाणिक बनाते हैं।

११. जल्प

जीतने की इच्छा से किया जाने वाला शास्त्रार्थ ही जल्प कहलाता हैं। जल्प का उद्देश यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना नही होतो है बल्कि प्रतिवादी को परास्त करना ही असका एकमात्र उद्देश होता है। जल्प में तर्क, प्रमाण, हेत्वाभास, छल, जाति इत्यादि दुष्ट युक्तियों का भी सहारा लिया जाता है।

१२. वितण्डा

जब जल्प करने वाला व्यक्ति अपने पक्ष की स्थापना नही कर केवल प्रतिपक्षी का खण्डन ही करता है तब ऐसे जल्प को वितण्डा कहते हैं। यहां विजय प्राप्त करने के उद्देश से प्रतिपक्षी कें मत का खण्डन केवल किंया जाता हैं।

१३. हेत्वाभास

अनुमान में होने वाले वास्तविक दोष को ही हेत्वाभास कहते हैं। हेत्वाभास का शाब्दिक अर्थ है

हेतु का आभास होना। यहां जो वास्तविक हेतु नहीं है वह वास्तविक के समान प्रतीत होतो है। वास्तविक हेतु की विशेषता साधकता है, परन्तु जिसमें साध्य को प्रमाणित करने का सामर्थ्य न हो उसे ही हेत्वाभास कहा गया हैं। अनुमान में होनेवाले एकमात्र कारण गलत हेतु या हेत्वाभास हैं। हेत्वाभास के भेद हैं – सव्यभिचार, विरुध्द, सत्प्रतिपक्ष, असिद्व एवं बाधित।

१४. छल

वक्त की कही हुई बात का अर्थ परिवर्तित कर उसमें दोष का अवलोकन कराना ही छल हैं। विवाद में एक ही शब्द के कई अर्थ हो सकते है तथा विवाद क्रम में अर्थ विशेष का ही प्रयोग किंया जाता हैं, परन्तु प्रतिवादी उस विशेष अर्थ का परित्याग कर उसके प्रसंग को बदलने के लिए जब दूसरे अर्थ की कल्पना कर लेता हैं तो असे ही छल कहते है। छल के तीन प्रकार है– वाक् छल, सामान्य छल, उपचार छल।

१५. जाति

केवल समानता एवं असमानता के आधार पर दोष दिखलाना ही जाति है। यदि कोई वादी की दोषरहित युक्ती का खण्डन केवल किसी भी प्रकार की समानता या असमानता पर आधारित अनुमान के द्वारा करता है तो उस अुनमान को ही जाति कहा जाता हैं।

१६. निग्रह स्थान

इसका शाब्दिक अर्थ है पराजय का स्थान। वादविवाद में जब वादी ऐसे स्थान पर पहुंच जाता है जहां उसे अपनल हार स्वीकार करनी पडती है तो उसे निग्रह स्थान कहते है। इसका कारण अज्ञान एवं गलन ज्ञान हैं। यहां वादी या तो अपने विषय का प्रतिपादन नहीं कर पाता है या अनुचित रुप से विषय का प्रतिपादन करता है, उसे ही निग्रह स्थान कहते है।

इस प्रकार न्याय दर्शन सोलह पदार्थों का स्वीकार करता है। इसी न्याय दर्शन को वस्तुवादी दर्शन भी कहते है। इन सोलह पदार्थों के यथार्थ और सम्यक् ज्ञान से अपवर्ग की प्राप्ति होती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

१. स्वामी दर्शनानन्दजी सरस्वती, न्याय –दर्शन. मथुरा :पुस्तक मन्दिर /
२. पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य, न्याय –दर्शन. बरेली : संस्कृति संस्थान/
३. आचार्य उदयवीर शास्त्री, न्यायदर्शनम्